अंत में

परिषद् द्वारा हाल में आयोजित एक भाषण में प्रोफ़ेसर शांता सिन्हा ने कहा कि गरीबों के लिए बच्चों को विद्यालय भेजना एक युद्ध से कम नहीं होता। जन्म और निवास के संतोषजनक प्रमाणपत्रों, आदि के साथ आखिरी तारीख से पहले प्रवेश के लिए फार्म भर देना जैसी ज़रूरी शर्तें हर माता-पिता को पहली कक्षा में अपना बच्चा दाखिल कराते समय पूरी करनी होती हैं। ग्रामीण जन तथा छोटे शहरों और महानगरों में आकर बसे लोगों के लिए इन शर्तों को पूरा करना काफ़ी दुश्वार होता है। लेकिन असली लड़ाई तब शुरु होती है जब बच्चा पहली कक्षा में जाने लगता है। एम.वी. फाउंडेशन की संस्थापक – निदेशक के रूप में अपने काम के दौरान मिले अनुभवों से अनेक उदाहरण प्रस्तुत करते हुए प्रोफ़ेसर शांता सिन्हा ने बताया कि पहली कक्षा के बच्चों को भावनात्मक संबल और प्रोत्साहन की कितनी कमी महसूस होती होगी।

गाँव के कई स्कूल तो सिर्फ़ दो अध्यापकों से ही काम चलाते हैं और आमतौर पर अपना ध्यान चौथी और पाँचवीं कक्षा पर ही केंद्रित रखते हैं, यानी वे पहली कक्षा को-जो स्कूल की सबसे बड़ी कक्षा होती है-बच्चों के भरोसे छोड़ देते हैं। यही कक्षा अगले वर्ष घिस-पिटकर दूसरी कक्षा के रूप में छोटी हो जाती है। पहली व दूसरी कक्षाओं में पढ़ाने वाले बहुत कम अध्यापकों में वैसा आत्मगौरव और भविष्यदृष्टा होने का भाव मिलता है जो 5-6 वर्ष की उम्र के बच्चों के साथ काम करने के लिए बहुत ज़रूरी है। हमारे देश में पहली व दूसरी कक्षा में शामिल की जाने वाली बहुत-सी पाठ्यपुस्तकें सोच और कल्पना के उन तरीकों का प्रतिबिंबन नहीं करतीं जिन्हें छोटे बच्चे स्वाभाविक रूप से जानते हैं। प्रधानाध्यापकों व अन्य अधिकारियों के मन में आमतौर से यह भावना छाई रहती है कि पहली कक्षा तो आगे की तैयारी का समय है। अपने आप में इस कक्षा का कोई महत्व नहीं है। लेकिन शिक्षाशास्त्र के सिद्धांत इसके ठीक विपरीत बात करते हैं। उनके अनुसार पहली कक्षा ही एक सामाजिक संस्था के रूप में विद्यालय के प्रति बच्चे के बुनियादी रवैये को आकार देती है। स्कूल में बीतने वाले आरंभिक महीने बच्चों के इस संकल्प को पक्का बनाने में निर्णायक भूमिका निभाते हैं कि वे विद्यालय को एक संजीदगी के साथ, एक भली जगह के रूप में स्वीकार करेंगे।

स्वभाव और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की दृष्टि से छोटे बच्चों और बड़े छात्रों में फर्क न कर पाना एक बड़ी व्यवस्थागत कमज़ोरी है जो पहली कक्षा के सुधार के रास्ते में एक बड़ी बाधा को पेश करती है। कई शिक्षित अध्यापक किशोर छात्रों की सामान्य मनोवैज्ञानिक विशेषताओं को मौखाग्र सुना सकते हैं, लेकिन इस बात का व्यवहारिक ज्ञान बहुत कम अध्यापकों में मिलता है कि पाँच साल का बच्चा किस तरह सोचता और कल्पना करता है। प्राथमिक स्तर के लिए अध्यापक प्रशिक्षण की पाठ्यचर्या प्राय: इतनी सपाट होती है कि प्रशिक्षण पूरा कर लेने पर भी अध्यापक को स्कूल में प्रवेश लेने वाले बच्चों की कोमल मानसिक दशा का अंदाज नहीं होता। ज़्यादातर अध्यापक बाल विकास के रूढ़ चरणों की अपनी अस्पष्ट जानकारी से ही काम चलाते हैं। उन्हें यह जानकारी नहीं होती कि एक वास्तविक बच्चे के साथ कैसे व्यवहार किया जाए। इसके लिए हम पहली कक्षा के उन अध्यापकों को दोष नहीं दे सकते जो अपने आपको स्कूली व्यवस्था के पदक्रम में सबसे नीचे समझते हैं और आगे भी ऐसा ही समझने की उम्मीद रखते हैं।

(एन.सी.ई.आर.टी. समाचार, जनवरी 2007 से साभार प्रकाशित)

कृष्ण कुमार
निदेशक
एन.सी.ई.आर.टी.